प्रेमचंद के फटे जूते

पाँवों में केनवस के जूते हैं, जिनके बंद बेतरतीब से बँधे है। लापरवाही से उपयोग करने पर बंद के सरों पर की लोहे की पतरी निकल जाती है और छेदों में बंद डालने में परेशानी होती है। तब बंद कैसे भी कस लए जाते हैं।

दाहिने पाँव का जूता ठीक है, मगर बाएँ जूते में बड़ा छेद हो गया है जिसमें से अंगुली बाहर निकल आई है। मेरी दृष्टि इस जूते पर अटक गई है। सोचता हूँ-फोटो को यह पोशाक है, तो पहनने की कैसी होगी? नहीं, इस आदमो की अलग-अलग नहीं होगी इसमें पोशाके बदलने का गुण नहीं है। यह जैसा है, ही फोटो में खंच जाता है।

प्रेमचंद के फटे जूते

मैं चेहरे की तरफ देखता हूँ क्या तुम्हें मालूम है, मेरे साहित्यिक पुरखे क तुम्हारा जूता फट गया है और अंगुली बाहर दिख रही है? क्या तुम्हें इसका भी अहसास नहीं है? जरा लज्जा, संकोच या झेंप नहीं है? क्या तुम इतना भी नहीं जानते क धोती को थोड़ा नीचे खींच लेने से अंगुली ढक सकती है? मगर फर भी तुम्हारे चेहरे पर बड़ी बेपरवाही बढ़ा वश्वास है। फोटोग्राफर ने जब 'रेडी-प्लीज' होगा, तब परंपरा के अनुसार तुमने मुसकान लाने की को शश की होगी, दर्द के गहरे कुएँ के तल में कहीं पड़ी मुसकान को धीरे-धीरे खींचकर ऊपर निकाल रहे होंगे क बीच में ही 'क्लिक' करके फोटोग्राफर ने 'थैंक यू' कह दिया होगा। व चत्र है यह अधूरी मुसकान यह मुसकान नहीं, इसमें उपहास है, व्यंग्य है।

प्रेमचंद के फटे जूते

फोटो ही खंचाना था, तो ठीक जूते पहन लेते, या न खचाते। फोटो न खंचाने से क्या बिगड़ता था। शायद पत्नी का आग्रह रहा हो और तुम 'अच्छा, चल भई कहकर बैठ गए होंगे। मगर यह कतनी बड़ी 'ट्रेजडी' है क आदमी के पास फोटो खंचाने को भी जूता न हो। मैं तुम्हारी यह फोटो देखते-देखते तुम्हारे क्लेश को अपने भीतर महसूस करके जैसे से पड़ना चाहता हूँ, मगर तुम्हारी आँखों का यह तीखा दर्द भरा व्यंग्य मुझे एकदम रोक देता है।

तुम फोटो का महत्व नहीं समझते। समझते होते, तो कसी से फोटो खचाने के लए जूते माँग लेते। लोग जो माँगे के कोट से वर दिखाई करते हैं। और माँगे की मोटर से बारात निकालते हैं। फोटो खचाने के लए तो बीवी तक माँग ली जाती है, तुमसे जूते ही माँगते नहीं बने। तुम फोटो का महत्व नहीं जानते। लोग तो इत्र चुपड़कर फोटो खचाते हैं जिससे फोटो में खुशबू आ जाए। गंदे-से-गंदे आदमी की फोटो भी खुशबू देती है।

मेरा जूता भी कोई अच्छा नहीं है। यो ऊपर से अच्छा दिखता है। अंगुली बाहर नहीं निकलती, पर अंगूठे के नीचे तला फट गया है। अंगूठा जमीन से घिसता है और पैनी मट्टी पर केभी रगड़ खाकर लहूलुहान भी हो जाता है। पूरा तला गर जाएगा, पूरा पंजा छिल जाएगा, मगर अंगुली बाहर नहीं दिखेगी। तुम्हारी अँगुली दिखती है, पर पाँव सर क्षत है। मेरी अंगुली ढँकी है, पर पंजा नीचे घिस रहा है। तुम परदे का महत्त्व ही नहीं जानते, हम परदे पर कुर्बान हो रहे हैं।

तुम्हारी यह व्यंग्य-मुसकान मेरे हौसले पस्त कर देती है। क्या मतलब है इसका? कौन सी मुसकान है यह? -क्या होरी का गोदान हो गया?
-क्या पूस की रात में नीलगाय हलकू का खेत चर गई?
-क्या सुजान भगत का लड़का मर गया; क्यों क डॉक्टर क्लब छोड़कर नहीं आ सकते?

नहीं, मुझे लगता है माधो औरत के कफ़न के चंदे की शराब पी गया। वही मुसकान मालूम होती है।

प्रेमचंद के फटे जूते

चलने से जूता घिसता है, फटता नहीं। तुम्हारा जूता कैसे फट गया?

मुझे लगता है, तुम कसी सख्त चीज़ को ठोकर मारते रहे हो। कोई चीज़ जौ परत-पर-परत सदियों से जम गई है, उसे शायद तुमने ठोकर मार-मारकर अपना जूता फाड़ लया। कोई टीला जो रास्ते पर खड़ा हो गया था, उस पर तुमने अपना जूता आजमाया।

तुम उसे बचाकर, उसके बगल से भी तो निकल सकते थे। टीलों से समझौता भी तो हो जाता है। सभी नदियाँ पहाड़ थोड़े ही फोड़ती हैं, कोई रास्ता बदलकर, घूमकर भी तो चली जाती है।

प्रेमचंद के फटे जूते

तुम समझौता कर नहीं सके। क्या तुम्हारी भी वही कमजोरी थी, जो होरी को ले डूबी, वही 'नेम-धरम' वाली कमजोरी? 'नेम-धरम' उसकी भी जंजीर थी। मगर तुम जिस तरह मुसकरा रहे हो, उससे लगता है कि शायद 'नेम धरम' तुम्हारा बंधन नहीं था, तुम्हारी मुक्ति थी!

तुम्हारी यह पाँव की अँगुली मुझे संकेत करती-सी लगती है, जिसे तुम घृणित समझते हो, उसकी तरफ़ हाथ की नहीं, पाँव की अँगुली से इशारा करते हो?

प्रेमचंद के फटे जूते

मैं समझता हूँ। तुम्हारी अँगुली का इशारा भी समझता हूँ और यह व्यंग्य-मुसकान भी समझता हूँ।

तुम मुझ पर या हम सभी पर हँस रहे हो, उन पर जो अँगुली छिपाए और तलुआ घिसाए चल रहे हैं, उन पर जो टीले को बरकाकर बाजू से निकल रहे हैं। तुम कह रहे हो मैंने तो ठोकर मार-मारकर जूता फाड़ लिया, अँगुली बाहर निकल आई, पर पाँव बचा रहा और मैं चलता रहा, मगर तुम अँगुली को ढाँकने की चिंता में तलुवे का नाश कर रहे हो। तुम चलोगे कैसे ? मैं समझता हूँ। मैं तुम्हारे फटे जूते की बात समझता हूँ, अँगुली का इशारा समझता हूँ, तुम्हारी व्यंग्य-मुसकान समझता हूँ!

प्रेमचंद के फटे जूते

मुझे लगता है, तुम कसी सख्त चीज़ को ठोकर मारते रहे हो। कोई चीज़ जो परत-पर-परत सदियों से जम गई है, उसे शायद तुमने ठोकर मार-मारकर अपना जूता फाड़ लया। कौई टीला जो रास्ते पर खड़ा हो गया था, उस पर तुमने अपना जूता आजमाया।
तुम उसे बचाकर, उसके बगल से भी तो निकल सकते थे। टीलों से समझौता भी तो हो जाता है। सभी नदियाँ पहाड़ थोड़े ही फोड़ती हैं, कोई रास्ता बदलकर, घूमकर भी तो चली जाती है।

प्रेमचंद के फटे जूते

क्या बनिये के तगादे से बचने के लए मील दो मील का चक्कर लगाकर घर लौटते रहे?

चक्कर लगाने से जूता फटता नहीं है, घिस जाता है। कुंभनदास का जूता भी फतेहपुर सीकरी जाने-आने में घिस गया था। उसे बड़ा पछतावा हुआ। उसने कहा 'आवत जात पन्हैया घिस गई, बिसर गयो हरि नाम।' और ऐसे बुलाकर देने वालों के लए कहा था- 'जिनके